THE TIMES OF INDIA

Date:16-05-23

Govts, Reach Out

GoI and Manipur must start talking to Meiteis and Kukis and form a committee to study their demands

TOI Editorials

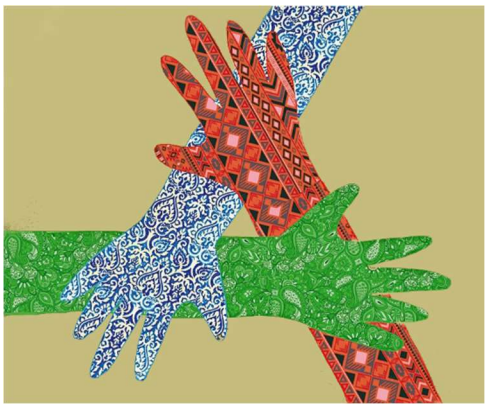

Violence in Manipur flared up again over the weekend with suspected Kuki militants targeting a Meitei village. This comes even as 10 Kuki MLAs from the state – seven of them from BJP – have called for a 'separate administration' for Manipur's hill areas. However, they have left the nature of this separation open-ended, seeking an arrangement within the Constitution. Given that carving out a separate state is unlikely in a sensitive border region of the country, the debate is veering back to bringing the Manipur hills under the Sixth Schedule of the Constitution.

The Sixth Schedule provides for local self-governance through autonomous district councils and currently covers tribal areas of Meghalaya, Tripura, Mizoram and Assam. Manipur too has district councils for its hill areas but these were constituted under a separate Act of Parliament – the Manipur (Hill Areas) District Council Act, 1971. But over the years there have been recurrent complaints that the mechanism hasn't worked well with devolution of powers from the state to the district councils not being effected in multiple areas. Thus, a revival of the Sixth Schedule demand by the Kukis can be seen as a counter to the Meiteis' demand for Scheduled Tribe status.

The two demands are also proxies for long-held economic grievances related to land prices and lack of non-farm employment. The land crunch in Meitei-dominated Imphal valley and the Manipur government's anti-poppy cultivation drive in Kuki-dominated hills have embittered both communities. The violence can also affect delicate peace negotiations between GoI and some of the Manipur insurgent groups. Governments at the state and Centre should reach out to all sides and all demands – including the Sixth Schedule and ST options – should be on the table. Forming a credible committee is a good idea.

THE ECONOMIC TIMES

Date:16-05-23

Competitive Populism Bad for India's Health

Cash transfers a far more robust option

ET Editorials

Freebies announced in an election year could weigh on India's slowing momentum of economic recovery. GoI has announced a medium-term fiscal deficit target of 4. 5% of GDP by 2025-26, which involves a 2-percentage-point compression from current levels over the course of three financial years. Targets for the Centre and states for 2023-24 are 5. 9% and 3%, respectively, with half-a-percentage point leeway to the latter for power sector reforms. States have a steeper glide path for deficit reduction that is particularly vulnerable to political promises of free food and energy. GoI, on its part, is committed to a capital expenditure programme to nurse India's economic recovery, and is nudging states towards fiscal balance.

India's ability to attain its pre-pandemic fiscal targets is also influenced by its need to keep credit flowing to small enterprises in an environment of globally high interest rates. Broad-based investment revival depends on keeping credit costs in check by better budgeting of government expenditure. States have an additional requirement of cleaning up offbudget liabilities accumulated through political promises such as those on free electricity. Power distribution being the sole point of revenue injection, state utilities' inability to pay is holding up investments in generation and transmission.

Apart from introducing imperfections in the market mechanism, sectarian political targeting of welfare perpetuates inequality. Universal wealth redistribution through cash transfers is a more robust approach. Promises to vote banks are essentially a zero-sum game where one segment benefits at the cost of another. India has unsuccessfully experimented with inclusive growth for much of its postIndependence history. It has now corrected course to grow through clusters accompanied by even-handed welfare delivery. This approach has worked in steering the economy through multiple global economic crises. A return to competitive populism will be an unnecessary throwback the world's fastest-growing major economy can do without.

दैनिक भास्कर

Date:16-05-23

लोकतंत्र में विकल्प देना दलों का दायित्व

संपादकीय

कहने को तो रूस और चीन में भी प्रजातंत्र है। धुर तानाशाह किम जोंग-शासित नॉर्थ कोरिया का पूरा नाम भी डेमोक्रेटिक पीपुल्स रिपब्लिक है। लेकिन वास्तविक लोकतंत्र वहां हैं, जिनमें जनता के पास चुनाव करने का मुक्त विकल्प हो। मुमकिन है कि विकल्पहीनता की स्थिति में जनता एक ही दल को चुनती रहे, लेकिन इसका सीधा मतलब होगा कि प्रतिस्पर्धी पार्टियां लोकप्रिय और विश्वसनीय नहीं बना पा रही हैं। कर्नाटक चुनाव परिणाम यही बताते हैं कि राजनीतिक

दलों के लिए जनता का दरवाजा हमेशा खुला रहता है। लेकिन इस परिणाम से अति उत्साह में 2024 के लोकसभा चुनाव के बारे में कोई राय बनाना गलत होगा। जनता विधानसभा और लोकसभा चुनावों में विपरीत परिणाम दे कर दर्जनों बार यह बात साबित कर चुकी है। दरअसल सत्ता चलाने में अक्सर गलतियां होती हैं लेकिन वे तभी जनमानस को उद्वेलित करती हैं जब विकल्प तैयार हो। वर्ष 2014 के चुनाव में सत्ताधारी दल पर भ्रष्टाचार के आरोप शायद परवान नहीं चढ़ते अगर विकल्प के रूप में भाजपा ने वर्तमान पीएम को मैदान में न उतारा होता। जर्मन चांसलर बिस्मार्क की उक्ति 'राजनीति संभाव्यताओं (प्रबंधन) की कला है जिन्हें हासिल और बेहतर किया जा सकता है'। यानी अगर जनता विकल्प नहीं देख पाती तो गलती पार्टियों की है। कांग्रेस के लिए यही सीख है कि वह राज्य में ही नहीं देश में भी विकल्प के रूप में पेश होने के विश्वसनीय 'तत्व' जुटाए। ये तत्व हैं- स्पष्ट सोच, सही समय पर सही मुद्दों को उठाना, प्रतिबद्ध कैडर बनाना, नेतृत्व की क्षमता और कार्यशैली से जनमत तैयार करना। इनके लिए कुछ माह का समय कम होता है। भाजपा को भी सोचना होगा कि हर समाज की सोच अलग होती है।

Date:16-05-23

हिंदू वोटों का ध्रुवीकरण नहीं कर पाया कर्नाटक का हिंदुत्व

अभय कुमार दुबे, (अम्बेडकर विवि,दिल्ली में प्रोफेसर)

कर्नाटक चुनाव के नतीजे आने से पहले राजनीति के ज्यादातर पंडित यह मानकर चल रहे थे कि बजरंग दल पर प्रतिबंध लगाने का वायदा करके कांग्रेस ने अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है। आईपीएल की भाषा में कहा जा रहा था कि कांग्रेस की इस लूज़ बॉल पर छक्के पर छक्के लगेंगे और जीती-जिताई बाजी सांसत में पड़ जाएगी। इस समीक्षा का मतलब यह था कि बजरंग दल और बजरंग बली में समानता स्थापित करके नरेंद्र मोदी कर्नाटक के वोटरों को हिंदू-ध्रुवीकरण की तरफ धकेल देंगे। इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए कहा जा रहा था कि इस तरह के धर्म-आधारित ध्रुवीकरण के लिए लव जिहाद और हिजाब जैसे मुद्दों का इस्तेमाल करके पहले से ही जमीन बन रही थी। कांग्रेस को सतर्क होकर कदम बढ़ाना था।

इसमें शक नहीं कि कांग्रेस पुराने मैसूर के मुसलमान मतदाताओं को अपनी ओर खींचने के लिए बजरंग दल पर प्रतिबंध के आश्वासन का इस्तेमाल करना चाहती थी, जो आम तौर पर उसके और जेडीएस के बीच बंट जाते थे। हुआ भी यही। ये मुसलमान मतदाता पहले से ही देवेगौड़ा की पार्टी द्वारा भाजपा के साथ चुनाव-उपरांत गठजोड़ करने के अंदेशे को समझ रहे थे। कांग्रेस के वादे ने ट्रिगर पाइंट का काम किया और उनका तकरीबन 75% हिस्सा हाथ पर बटन दबाने के लिए तैयार हो गया। पर प्रतिक्रिया में हिंदू-ध्रुवीकरण क्यों नहीं हुआ?

इसका जवाब कन्नड़ समाज की संरचना और कर्नाटक के तटीय इलाकों में हिंदुत्ववादी विचारधारा के प्रसार में देखा जाना चाहिए। संघ के प्रयासों से तटवर्ती कर्नाटक भगवा जरूर हो गया, लेकिन उसकी राजनीतिक अभिव्यक्तियां कभी गुजरात या यूपी जैसे कट्टरपंथी हिंदुत्व में नहीं हुईं। येदियुरप्पा लिंगायत समाज के अभी तक के सबसे बड़े जननेता माने जाते हैं, पर वे भाजपा के अंदर सक्रिय कट्टरपंथी लॉबी से कभी सहमत नहीं रहे। इस चुनाव के शुरुआती दौर में भी अखबारों को एक इंटरव्यू देकर उन्होंने हिजाब जैसी मुहिमों के प्रति अपनी नापसंदगी जाहिर की थी। भाजपा छोड़ कर गए जगदीश

शेट्टार भी इसी तरह के लिंगायत नेता रहे हैं। कट्टरपंथी लॉबी बी.एल. संतोष कुमार और टी.एस. रवि (जो बुरी तरह से चुनाव हार गए) के नेतृत्व में इन लिंगायत नेताओं को हमेशा परेशान करती रही। लिंगायतों के बीच हिंदुत्ववादी विचारधारा का असर कितना कमज़ोर था, इसका पता इस बात से लगाया जा सकता है कि जैसे भाजपा आलाकमान ने किसी लिंगायत को सीएम का चेहरा बनाने से इन्कार किया, वैसे ही उन्होंने अपनी मतदान- प्राथमिकताओं पर पुन: विचार करना शुरू कर दिया। उन्होंने देखा कि कांग्रेस ने भी 40 से ज्यादा लिंगायत उम्मीदवारों को मैदान में उतारा है। इसका परिणाम यह निकला कि लिंगायत मतदाताओं के वोट अच्छी-खासी संख्या में कांग्रेस के खाते में चले गए। इसने भाजपा के मुख्य जनाधार को तोड़ दिया।

संघ ने कर्नाटक के विश्वविद्यालयों के छात्रसंघों में अपना दबदबा कायम करके हिंदुत्व की राजनीतिक सफलता की शुरुआत की थी। लेकिन अगर आज इन्हीं विश्वविद्यालय के परिसरों में जाकर भाजपा समर्थक छात्राओं से पूछा जाए तो वे कहेंगी कि मुसलमान छात्राओं को भी शिक्षा प्राप्त करने का हक है, और अगर वे हिजाब पहनकर आना चाहती हैं तो इसमें कोई बुरी बात नहीं है। भाजपा ने ओल्ड मैसूर के इलाके में यह प्रचार करने की पूरी कोशिश की कि टीपू सुल्तान की मृत्यु किसी अंग्रेज की तलवार से नहीं बल्कि एक वोक्कालिगा की तलवार से हुई थी। लेकिन उसकी एक न चली। वोक्कालिगा और मुसलमान मतदाताओं के बीच के सामाजिक संबंध खराब नहीं हुए। वे जानते थे कि अंग्रेजों ने जो नरसंहार किया था, उसमें मुसलमानों के साथ वोक्कालिगाओं का खून भी बहा था।

कर्नाटक के हिंदू मुसलमान-विरोधी ध्रुवीकरण के लिए तैयार नहीं थे। उल्टे भाजपा के रणनीतिकारों को डर था कि कहीं हिंदू समुदायों में लिंगायत विरोधी ध्रुवीकरण न हो जाए। इसी डर से अमित शाह ने कहा था कि अगर भाजपा ने किसी लिंगायत को सीएम का चेहरा घोषित कर दिया तो उसके खिलाफ गैर-लिंगायत एकजुट हो जाएंगे। प्रधानमंत्री ने मंच से जय बजरंगबाली के नारे खूब लगाए। भाजपा नेता आखिरी दिन तक हनुमान चालीसा का पाठ करके हिंदू गोलबंदी की कोशिश करते रहे। पर जिन मुद्दों की चली- वे महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और कुशासन के थे। कर्नाटक के चुनाव नतीजों ने बता दिया कि महंगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और कुशासन के मुद्दे महज स्थानीय नहीं हैं। इन्हीं मुद्दों पर भाजपा हिमाचल और दिल्ली की महानगरपालिका में हार चुकी है। इससे यह भी साफ हुआ कि भाजपा हर चुनाव प्रधानमंत्री के भाषणों और अमित शाह के प्रबंधन के दम पर नहीं जीत सकती।

दैनिक जागरण

Date:16-05-23

प्रतिस्पर्धा की भेंट चढ़ते छात्र

डा. तुलसी भारद्वाज, (लेखिका सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ में विज्ञानी और आस्ट्रेलिया से एंडेवर पोस्ट डाक्टरेक्ट फेलो हैं)

पिछले दिनों आइआइटी मद्रास में एक छात्र की आत्महत्या की दुखद घटना ने देश को इस समस्या की गंभीरता के बारे में फिर से चेताया है। संसद के बीते सत्र में स्वयं केंद्रीय शिक्षा मंत्री ने भी इसका जिक्र किया था। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के अनुसार देश भर के शैक्षिक संस्थानों में छात्रों की आत्महत्या का आंकड़ा वर्ष 2021 से न केवल लगातार प्रति वर्ष 13 हजार के ऊपर बना हुआ है, बल्कि लगभग चार प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ भी रहा है। इस हिसाब से देखें तो देश भर में प्रति दिन 35 छात्र आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे हैं। संसद में ही नहीं, राजस्थान विधानसभा में भी कुछ समय पहले यह मुद्दा जोर-शोर से उठा था जब मात्र कुछ समय के अंतराल में ही देश में कोचिंग का हब बन चुके कोटा शहर में हुई छात्रों की आत्महत्या ने पूरे देश को दहला दिया था। दुख का विषय यह है कि आजादी और आधुनिकता के इस दौर में भी छात्रों की आत्महत्या का सिलसिला बढ़ने पर भी इसके समाधान के लिए कहीं कोई आवाज नहीं उठ रही है।

इस संदर्भ में वर्ष 2018 में राजस्थान सरकार द्वारा शैक्षणिक संस्थानों और मुख्य रूप से कोटा में चल रहे कोचिंग संस्थानों के लिए एक विस्तृत गाइडलाइन जारी की गई थी, जिसमें छात्रों के मानसिक तनाव को कम करने के लिए ठोस उपायों एवं कारणों की समीक्षा के लिए एक समिति का गठन किया गया था, परंतु आज तक उस समिति की रिपोर्ट सामने नहीं आ पाई है। राज्य सरकार वर्षों से प्रस्तावित राजस्थान कोचिंग संस्थान नियंत्रण एवं विनियमन बिल को पेश करने में कुछ खास गंभीरता नहीं दिखा रही है। इस बिल के अनुसार इन कोचिंग संस्थानों में प्रवेश के लिए एक स्क्रीनिंग टेस्ट अनिवार्य होगा। इसमें उत्तीर्ण होने वालों को ही प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के लिए प्रवेश दिया जाएगा। जाहिर है इसका असर सीधे तौर पर कोचिंग संस्थानों के मुनाफे पर पड़ेगा। लगता है इसी कारण इस बिल को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है। इस प्रकार अभी तक ये संस्थान सरकारी नियमावली से बाहर हैं।

हालांकि देश के अन्य शिक्षण संस्थानों की तरह ये कोचिंग संस्थान भी छात्रों में मानसिक सहजता लाने के लिए प्रभावी तंत्र होने का दावा करते हैं, परंतु जमीनी हकीकत तथा नतीजे कुछ और ही कहनी कहते हैं। इसकी आवश्यकता को समझते हुए ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में शैक्षिक संस्थानों में एक परामर्श प्रणाली बनाने की बात की गई है जिसमें छात्रों का शैक्षणिक तनाव घटाने और उन्हें भावनात्मक रूप से मजबूत करने के लिए विभिन्न उपायों को सूचीबद्ध किया गया है।

इसमें छात्रों में तनाव के मामलों को शीघ्र पता लगा कर उन्हें मनोवैज्ञानिक परामर्श प्रदान करना, सुचारु हेल्पलाइन शुरू करना, छात्र कल्याण केंद्र और इस तरह के सहयोगी तंत्र को सक्रिय रूप से लागू करने जैसे उपाय शामिल हैं, परंतु इस समस्या की असल जड़ वह गलाकाट प्रतिस्पर्धा है, जिसको विकराल रूप देने में इन कोचिंग संस्थानों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। आज भी अधिकांश भारतीय युवा स्वरोजगार नहीं, बल्कि उच्च संस्थानों एवं प्रशासनिक पदों का सपना लिए हर वर्ष स्वतः ही इस प्रतिस्पर्धा का हिस्सा बन रहे हैं। अति व्यस्त, रोजी-रोटी की दौड़ में लगे अभिभावकों के लिए अपने बच्चों को कोचिंग तंत्र के भरोसे छोड़ना ही एक सरल विकल्प नजर आता है। बच्चों की व्यक्तिगत क्षमता एवं प्रतिभा का आकलन किए बिना ही उनको कोचिंग रूपी फैक्ट्री में डाल देते हैं। भारत में हर साल जेईई और नीट की परीक्षा देने वाले छात्रों की संख्या क्रमशः दस और बीस लाख के आसपास रहती है। परिणामस्वरूप आज विद्यालयों से भी अधिक अनिवार्य हो चुके इन संस्थानों का एक बड़ा कारोबार खड़ा हो गया है। इसमें अन्य माध्यमिक स्तर की परीक्षाओं को भी सम्मिलित कर लिया जाए तो यह आंकड़ा किसी छोटे देश की अर्थव्यवस्था को भी पीछे छोड़ देता है। तो इनकी कहानी कुछ ऐसी है कि विशाल बाजार है, करोड़ों उपभोक्ता हैं, पर उत्पाद की कोई गारंटी नहीं।

मानसिक विलक्षणता को हम मात्र अंकों के आधार पर नहीं आंक सकते। प्रतिवर्ष प्रतियोगिता में बढ़ती मेरिट के नए कीर्तिमान और इसे हासिल करने में छात्रों के बचपन, सेहत और सर्वांगीण मानसिक विकास की संभावनाएं दांव पर लग रही हैं। असल में इस कृत्रिम प्रतियोगिता पर नियंत्रण ही इस समस्या का समाधान है, क्योंकि तलवार की धार पर चलने के समान बढ़ाई जा चुकी इस अनावश्यक प्रतिस्पर्धा के युग में अधिकांश छात्र अवसाद एवं कुंठा में घिर गए हैं और भावनात्मक सहयोग की कमी एवं संवाद के अभाव के चलते अक्सर कम उम्र में ही अपने जीवन से विमुख हो जा रहे हैं। मनोविज्ञानियों के अनुसार बचपन से ही अपनाई गई अति पेशेवर जीवनशैली धीरे-धीरे छात्रों में एक भावनात्मक न्यूनता को जन्म दे देती है, जिस कारण उनका मानसिक अवसाद से उबरना और कठिन हो जाता है। इसलिए आज यह बहुत आवश्यक हो गया है कि भारत के हर एक होनहार को अपनी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर ही कौशल विकसित करने का अवसर मिले। एक स्क्रीनिंग टेस्ट के आधार पर ही कोचिंग संस्थानों में प्रवेश निर्धारित हो। तत्पश्चात कोचिंग संस्थान भी प्रशासनिक नियंत्रण एवं नियमावली का पालन करें। आज बड़े से बड़े कोचिंग संस्थान अध्यापकों की अनियमितता, एडवांस फीस सिस्टम, विषयवार टाइम टेबल का अभाव और विषय विशेषज्ञ के न्यूनतम वेतन आदि से जुड़ी कमियों के शिकार हैं। शासन-प्रशासन इनका समाधान करे, ताकि भारत का भविष्य गलकाट प्रतिस्पर्धा की भेंट न चढ़ें।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:16-05-23

आर्टिफिशल इंटेलिजेंस से जुड़े कुछ नये भय

अजित बालकृष्णन, (लेखक इंटरनेट उद्यमी हैं)

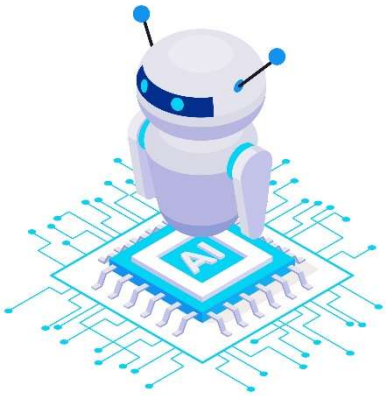

ज्योफ्रे हिंटन ने हाल ही में गूगल छोड़ने की घोषणा की और जब उनसे पूछा गया कि वह ऐसा क्यों कर रहे हैं तो उन्होंने जवाब दिया, 'मैंने इसलिए छोड़ा ताकि मैं आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) के खतरों के बारे में बिना यह सोचे बात कर सकूं कि इसका गूगल पर क्या असर होगा।' उनकी इस बात ने हम सभी को यह सोचने पर विवश कर दिया कि आखिर हमारे सामने क्या कुछ आने वाला है।

हम सभी हिंटन की टिप्पणी को इसलिए बहुत गंभीरता से लेते हैं क्योंकि उन्हें वैज्ञानिक हलकों में एआई के संरक्षक के तौर पर जाना जाता है। 'न्यूट्रल नेटवर्क' के पीछे उन्हीं का दिमाग है। यह एक गणितीय अवधारणा है जो इंसानी भाषाओं के भारी-भरकम डेटाबेस से खास किस्म के रुझानों को अलग करती है। ऐसे में आप कह सकते हैं कि चैटजीपीटी जैसे कार्यक्रम बिना न्यूट्रल नेटवर्क के अस्तित्व में नहीं आ सकते थे और हिंटन ने इसे इस्तेमाल लायक बनाने में योगदान किया है।

ज्योफ्रे हिंटन की बातों और उनके कदमों का शायद वही प्रभाव हो जो उस समय होता अगर होमी भाभा ने सन् 1950 के दशक में यह कहते हुए परमाणु ऊर्जा आयोग छोड़ दिया होता कि, 'मैंने इसलिए छोड़ दिया ताकि मैं बिना यह सोचे परमाणु ऊर्जा के खतरों के बारे में बात कर सकूं कि इन बातों का भारत के परमाणु कार्यक्रम पर क्या असर होगा?' अगर वैसा होता तो भारत शायद परमाणु ऊर्जा को लेकर अपने बड़े-बड़े सपने पहले ही त्याग देता। या फिर मानो ईएमएस नंबूदरीपाद मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी छोड़ते हुए यह कहते, 'मैंने इसलिए पार्टी छोड़ी ताकि मैं मार्क्सवाद के खतरों के बारे में बात कर सकूं..वगैरह।'

आमतौर पर तकनीकी क्षेत्र में किसी भी नई पहल के समय कुछ लोग आशंका जताते हैं कि इससे नौकरियों को नुकसान होगा। इस बार रहस्यमय बात यह है कि एक नई तकनीक के सह रचयिता ने चेतावनी दी है। ऐसे में हमारे लिए जरूरी है कि हम उसकी बात सुनें।

तकनीक पर अगर निगरानी न रखी जाए तो वह मुश्किल हालात पैदा कर सकती है। उदाहरण के लिए भोपाल में सन 1984 में यूनियन कार्बाइड (एवरेडी बैटरी की निर्माता) के कारखाने में घटित भोपाल गैस त्रासदी को याद कीजिए। तीन दिसंबर, 1984 को करीब 45 टन खतरनाक मिथाइल आइसोसाइनेट गैस इस कीटनाशक संयंत्र से रिसी और करीब 15,000 लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी। तकरीबन पांच लाख बचे हुए लोग दृष्टिहीनता तथा कई प्रकार की अन्य बीमारियों के शिकार हुए क्योंकि वे विषाक्त गैस के संपर्क में आए थे। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार इस बात पर सहमति बनी कि कमतर परिचालन और सुरक्षा प्रक्रिया की कमी के कारण यह त्रासदी घटित हुई। दूसरे शब्दों में कहें तो यह मामला बिना समुचित निगरानी के तकनीक के इस्तेमाल का था। हिंटन ने सार्वजनिक रूप से जो चिंताएं जताईं उनमें एक प्रमुख चिंता यह थी कि 'बुरे काम करने वाले' एआई का इस्तेमाल करके गलत काम कर सकते हैं। ऐसे काम जो मासूम नागरिकों को प्रभावित करें। वह उदाहरण देते हैं कि अधिनायकवादी नेता कृत्रिम ढंग से तैयार भाषणों और लेखन का उपयोग करके मतदाताओं को प्रभावित करते हैं। कुछ ऐसे उदाहरण भी हैं जिन्हें कहीं अधिक आसानी से समझा जा सकता है। एक उदाहरण है चालकरहित बस का एक यातायात संचालित पथ पर घुस जाना या सैन्य ड्रोन का मासूम लोगों पर हमला कर देना।

सवाल यह है कि ऐसे में केवल चिंतित होने के अलावा हम नीतिगत स्तर पर क्या कदम उठा सकते हैं?

हाल के सप्ताहों में कई शोधकर्ताओं और सिलिकन वैली के कई थिंकटैंक्स ने दुनिया भर के लोगों से यह अपील करनी आरंभ की है कि वे एक ऐसे खुले पत्र पर हस्ताक्षर करें जो जीपीटी4 (चैटबॉट जीपीटी के निर्माताओं द्वारा निर्मित) से अधिक शक्तिशाली एआई प्रयोगों को छह माह के लिए रोकने की मांग करता है। फ्यूचर ऑफ लाइफ इंस्टीट्यूट ने 28,000 लोगों से ऐसी एक अपील पर हस्ताक्षर कराए। हस्ताक्षर करने वालों में टेस्ला के संस्थापक और ट्विटर के मालिक ईलॉन मस्क, ऐपल के सह-संस्थापक स्टीव वोजनियाक और डीप लर्निंग और टूरिंग अवार्ड विजेता योशिओ बेंजियो शामिल थे।

इन लोगों की कुछ अनुशंसाएं इस प्रकार हैं: ऐसे तरीके निकालें जो एआई से तैयार सामग्री को पहचान सकें, एआई से होने वाले नुकसान की जवाबदेही तय हो, एआई प्रणाली के लिए तीसरे पक्ष द्वारा अंकेक्षण और प्रमाणन की व्यवस्था हो (पूरी रिपोर्ट 'एफएलआई रिपोर्ट: पॉलिसी मेकिंग इन द पॉज')।

हम खुद को जिस स्थिति में आते हैं वह सन 1990 के दशक के इंटरनेट के शुरुआती समय की याद दिलाती है। उस समय भी ऐसी ही चेतावनी दी जाती थी और कहा जाता था कि इंटरनेट तकनीक के कारण लोग घृणा फैलाने वाले या

अश्लील संदेशों का प्रसार करेंगे या सूचनाओं की चोरी करेंगे। कहा जाता था कि इंटरनेट नवाचार के कारण मानवता का नष्ट होना तय है। हमने उन चिंताओं को दूर करने के लिए कानून बनाए और मध्यवर्ती प्लेटफॉर्म का निर्माण किया जो ऐसे मंच मुहैया कराते थे जहां लोग सामग्री तैयार कर सकते थे और अन्य लोग उन पर टिप्पणियां कर सकते थे। इसके चलते रचनाकारों और टीकाकारों को गलत व्यवहार से जुड़ी तमाम तरह की कानूनी जवाबदेहियों से मुक्ति हासिल हुई और मध्यवर्ती कंपनियों और प्लेटफॉर्म को निरंतर नवाचार करने का अवसर मिला। इस क्षेत्र में भी विभिन्न प्रकार के कानून लाकर जवाबदेहियों को इसी प्रकार बांटा जा सकता है।

इन तमाम विषयों पर विचार करते हुए यह संभव है कि उन शोधकर्ताओं, निवेशकों और उद्यमियों के लिए कठिनाई पैदा हो जाए जो अपने काम को बढ़ाचढ़ाकर बताने के लिए आर्टिफिशल इंटेलिजेंस की अभिव्यक्ति का इस्तेमाल कर बैठते हों। क्या ऐसी तकनीक को 'मशीन लर्निंग' का नाम देना अधिक उचित होगा? आर्टिफिशल इंटेलिजेंस का इस्तेमाल करने से यह संकेत मिलता है कि वे जिस अलगोरिद्म या गैजेट का विकास कर रहे हैं उसमें खास तर्क शक्ति है। यही बात दिक्कत पैदा करती है।ऐसे में क्या हमें ऐसा कानून लाने की आवश्यकता है जिसके तहत आर्टिफिशल इंटेलिजेंस पर रोक लगा दी जाए और ऐसे तमाम कामों को मशीन लर्निंग कहा जाए?

Date:16-05-23

कृषि क्षेत्र में महिलाओं के साथ भेदभाव

सुरिंदर सूद

भारतीय कृषि क्षेत्र की महिला श्रमिकों पर निर्भरता बढ़ती ही जा रही है। यह बात कई शोध एवं अध्ययन से सिद्ध भी हो गई है। इन शोध एवं अध्ययनों में जो तथ्य आए हैं उनकी पुष्टि कृषि जनगणना एवं विभिन्न सर्वेक्षणों में भी हो चुकी है। देश में आर्थिक रूप से सक्रिय कुल महिलाओं में करीब 80 फीसदी कृषि क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं। कृषि श्रम बल में जितने लोग शामिल हैं उनमें महिला श्रमिकों की भागीदारी एक तिहाई है। इतना ही नहीं, जितने भी स्वरोजगार प्राप्त किसान हैं उनमें महिलाओं का अनुपात 48 फीसदी है। कुल मिलाकर, शहरों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की कार्य में भागीदारी दर 41.8 फीसदी है। शहरी क्षेत्रों में यह आंकड़ा 35.13 फीसदी है।

पशुपालन से जुड़े करीब 95 फीसदी कार्य महिलाएं ही करती हैं। खेतों में फसलों के उत्पादन में महिलाओं की भागीदारी 75 फीसदी है। फल एवं सब्जियां उगाने से जुड़ी गतिविधियों में भी महिलाओं की भागीदारी 79 फीसदी है। फसलों की कटाई के बाद जितने कार्य होते हैं वे ज्यादातर महिलाओं द्वारा ही संपादित होते हैं। प्राय: देखा गया है कि जमीन का आकार कम होने एवं इन पर मालिकाना हक का विभाजन बढ़ने से रोजगार की तलाश और अधिक आय अर्जित करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले पुरुष शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। इससे छोटी एवं सीमांत कृषि जमीन के प्रबंधन की सारी जिम्मेदारी महिलाओं के कंधों पर आ गई है। वर्ष 2017-18 की आर्थिक समीक्षा में आधिकारिक रूप से इस बात को स्वीकार किया गया है। उस समीक्षा में कहा गया था कि पुरुषों के ग्रामीण क्षेत्रों से निकलकर शहरों की तरफ रोजगार की खोज में जाने से कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी काफी बढ़ गई है। अब बड़ी संख्या में महिलाएं पशुपालन से लेकर, उत्पादक, उद्यमी कृषि श्रमिक एवं गृहिणी जैसी विभिन्न भूमिकाओं में एक साथ नजर आ रही हैं।

कृषि क्षेत्र में महिलाएं जिन गतिविधियों में लगी हैं उनके लिए विशेष हुनर की जरूरत नहीं होती है मगर इनमें परिश्रम अधिक करना पड़ता है। ऐसे कार्यों के लिए पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं को इसलिए तरजीह दी जाती है कि कि वे कठिन परिश्रम कर सकती हैं और कम और अनियमित भुगतान पर भी काम करने के लिए तैयार रहती हैं। महिला श्रमिक घासों की कटाई, खेत से खरपतवार निकालने, कुदाल-खुरपी चलाने, कॉटन स्टिक एकत्र करने, कपास बीज से रेशे और अनाज से भूसा अलग करने के काम के लिए उपयोगी मानी जाती हैं। महिलाएं घरेलू मवेशी की भी देखभाल कर लेती हैं, उन्हें चारा-पानी देने के साथ उनसे दूध निकालती हैं और दही, मक्खन, घी जैसे कीमती उत्पाद भी तैयार करती हैं। उल्लेखनीय है कि कृषि क्षेत्र में कुछ ऐसे कार्य भी होते हैं जिनके लिए कुछ प्रशिक्षण की जरूरत होती है और महिलाएं इनके लिए पुरुषों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं। उदाहरण के लिए संकर वर्ण के कपास बीज उत्पादन के कार्य में परागण बहुत ही धैर्य, सटीक तरीके से करना पड़ता है और फूलों के चयन का विशेष ध्यान रखना होता है। पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं ये कार्य अधिक संजीदगी से कर सकती है। खेतों में धान की रोपाई भी एक ऐसा ही काम है जो अक्सर पुरुषों के मुकाबले महिलाएं अधिक तेजी से कर लेती हैं।

मगर अफसोस की बात है कि कृषि क्षेत्र में महिलाओं के अहम योगदान के बावजूद उनके साथ कई मामलों में सौतेला व्यवहार होता है। महिलाएं सिर्फ कृषि कार्यों में ही बढ़-चढ़ कर हिस्सा नहीं लेतीं बल्कि वे घरेलू कार्य भी उतनी ही बखूबी से करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर कृषि क्षेत्र में महिलाओं एवं पुरुषों में असमानता काफी अधिक है। शहरों में दोनों के बीच भेदभाव कम पाया जाता है। हालांकि, शहरों में भी कार्यालयों में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में प्रायः कम अहमियत दी जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार का मुखिया पुरुषों को ही माना जाता है, भले ही वे भले घरेलू काम न के बराबर करते हैं। खेतों का मालिकाना हक भी आधिकारिक रूप से पुरुषों के नाम पर ही होता है। सरकार द्वारा चलाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं के केंद्र में भी पुरुष ही रहते हैं। इसका मुख्य कारण जमीन का मालिकाना हक है जो पुरुषों के नाम पर ही होता है। महिलाएं अधिक काम करती हैं और वे जमीन-जायदाद का मालिकाना हक पाने की वास्तविक हकदार हैं। जमीन का मालिकाना हक महिलाओं के नए नाम पर नहीं होने से उन्हें ऋण आदि की सुविधा भी नहीं मिलती है। इसकी वजह यह है कि ऋण के बदले गिरवी रखने के लिए उनके पास जमीन-जायदाद आधिकारिक रूप में नहीं होती है। महिलाओं को इसी वजह से सहकारी समितियों या किसान उत्पादक संगठनों की सदस्यता लेने में परेशानी होती है। महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में भी महिलाओं की भागीदारी कम है। सबसे बदतर स्थिति तब होती है जब एक ही कार्य के लिए महिलाओं को कम और पुरुषों को अधिक पारिश्रमिक दिया जाता है।

आर्थिक मोर्चे पर कमजोर होने के साथ ही सामाजिक स्तर भी महिलाओं के साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं किया जाता है। उनके साथ घरों में भी दुर्व्यवहार होता है और उनमें कई हिंसा की शिकार भी होती हैं। वैसे तो यह सामाजिक मुद्दा माना जा सकता है लेकिन जमीन-जायदाद का मालिकाना हक महिलाओं के नाम पर नहीं होने से इसका गहरा ताल्लुक है। एक अध्ययन में यह पाया गया है कि उन महिलाओं के साथ शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दुर्व्यवहार अधिक होता है जिनके नाम पर जमीन-जायदाद नहीं होती है। जिन महिलाओं के नाम पर जमीन एवं अन्य जायदाद होती हैं उनके साथ सामाजिक स्तर पर दुर्व्यवहार या हिंसा अपेक्षाकृत कम होती है। लिहाजा, महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन को देखते हुए उन्हें इस विकट परिस्थिति से निकालना आवश्यक है। महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तीकरण के लिए कृषि क्षेत्र में उनकी भूमिका एवं क्षमता को और अधिक निखारने की जरूरत है। मगर ऐसा तभी संभव हो पाएगा जब जमीन-जायदाद का मालिकाना हक उनके पास होगा और ऋण, तकनीक सीखने एवं आवश्यक प्रशिक्षण पाने तक उनकी पहुंच आसान होगी।

संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के अनुसार महिला एवं पुरुषों की संसाधन, कौशल विकास, और कृषि क्षेत्र में अवसरों तक समान पहुंच होने से विकासशील देशों में कृषि उत्पादन 2.5 से 4 फीसदी तक बढ़ाया जा सकता है। उत्पादन पूर्व और फसलों की कटाई के बाद की गतिविधियों तक कृषि मूल्य श्रृंखला में महिलाओं की बड़ी भागीदारी को देखते हुए भारत में भी कृषि विकास नीतियों का महिलाओं को लेकर संवेदनशील होना आवश्यक है। कृषि क्षेत्र में कृषि कार्यों से जुड़े विषयों पर तकनीकी मदद एवं सुविधाओं में भी महिलाओं की जरूरतों का ध्यान रखा जाना चाहिए। ये सुविधाएं पुरुषों पर ही अधिक केंद्रित रहती हैं। महिलाओं की शारीरिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए कृषि कार्यों के दौरान उन पर परिश्रम का बोझ कम करने के लिए विशेष कृषि उपकरणों की जरूरत है। जमीन एवं जायदाद पर महिलाओं के मालिकाना हक को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रोत्साहन दिए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए पंजीयन से लेकर अन्य शुल्कों में रियायत दी जा सकती है। ये उपाय महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा देने के साथ ही सरकारी कल्याणकारी योजनाओं तक उनकी (महिलाओं) आसान पहुंच सुनिश्चित कर सकते हैं। इससे महिलाओं की समाज में स्थिति भी मजबूत होगी और घरेलू एवं कृषि से जुड़े निर्णय लिए जाने की प्रक्रिया में भी उनकी भूमिका बढ़ जाएगी।

जनसत्ता

Date:16-05-23

मध्य-पूर्व में शक्ति संतुलन की होड़

ब्रह्मदीप अलूने

शक्ति संतुलन,अंतरराष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसमें यह प्राथमिकता से सुनिश्चित किया जाता है कि कोई भी शक्ति इतनी प्रबल न हो जाए कि उससे दूसरे राष्ट्रों के हितों की रक्षा न की जा सके। चीन अफ्रीका, मध्य-पूर्व, मध्य एशिया और यूरोप के सारे आर्थिक मार्गों को अपने नियंत्रण में करने की कोशिश कर रहा है। दुनिया के अन्य क्षेत्रों के साथ ही खासकर मध्य-पूर्व में चीन के बढ़ते प्रभुत्व को नियंत्रित और संतुलित करने के लिए भारत, अमेरिका और संयुक्त अरब अमीरात के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार सऊदी अरब में मिले हैं। ये तीनों देश इजराइल के समर्थन से 'कनेक्टिविटी कारिडोर' के निर्माण की वृहत योजना को साकार करने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं, जो भारत से अरब की खाड़ी से गुजरता हुआ इजरायल, जार्डन तक और फिर वहां से यूरोपीय संघ तक विस्तृत होगा। 'कनेक्टिविटी कारिडोर' का विचार अमेरिका, इजराइल, भारत और यूएई ने दो वर्ष पहले ही कर लिया था, लेकिन हाल ही में चीन ने सऊदी अरब और ईरान के राजनयिक संबंध बहाल करवाने में जो सफलता अर्जित की है, उससे अमेरिका, इजराइल और भारत चकित हैं और इसे बड़ी चुनौती के रूप में देख रहे हैं।

चीन आर्थिक गलियारे के तहत कई देशों में करोड़ों डालर का निवेश कर चुका है। चीन और खाड़ी देशों के बीच मुक्त व्यापार को लेकर वार्ताएं करीब एक दशक से चल रही हैं। चीन इस इलाके में शांति स्थापित करके न केवल अपने व्यापरिक साम्राज्य को सफल बना सकता है, बल्कि वह सामरिक बढ़त भी लेना चाहता है।

मध्य-पूर्व में महाशक्तियों के बहुत सारे सामरिक और आर्थिक हित मौजूद हैं। महाशक्तियों के हित और शक्ति संतुलन के बीच तेल संपदा का भी एक महत्वपूर्ण द्वंद्व है, जो शह और मात के खेल को पश्चिम एशिया तक खींच लाता है। इसमें शिया-सुन्नी विवाद को हवा देकर, आपसी जोर आजमाइश और प्रतिद्वंद्विता को बढ़ावा दिया गया है। विश्व के संपूर्ण उपलब्ध तेल का लगभग छियासठ फीसद ईरान की खाड़ी के आसपास के इलाकों, जिनमें मुख्य रूप से कुवैत, ईरान और सऊदी अरब शामिल हैं, में पाया जाता है। सोवियत संघ और अमेरिका तो तेल के मामले में आत्मनिर्भर हैं, लेकिन अगर यूरोप को इस इलाके से तेल प्राप्त होना बंद हो जाए तो उसके अधिकांश उद्योग-धंधे बंद हो जाएंगे। यही कारण है कि पश्चिमी देश मध्य-पूर्व पर अपना नियंत्रण बनाए रखना चाहते हैं।

इन सबके बीच मध्य-पूर्व में कड़े प्रतिद्वंद्वियों को जोड़ने की चीन की कोशिशें न तो अमेरिका के लिए व्यक्तिगत स्तर पर फायदेमंद हैं और न ही इजराइल की सुरक्षा के लिए। चीन भारत का परंपरागत प्रतिद्वंद्वी है और मध्य-पूर्व में भारत के आर्थिक और सामरिक हित भी इससे प्रभावित हो सकते हैं। पश्चिम एशिया में लगभग अस्सी लाख भारतीय निवास करते हैं, जिनमें से केवल संयुक्त अरब अमीरात में इनकी संख्या पच्चीस लाख है। भारत को इस भूभाग में अत्यंत सतर्कता से आगे बढ़ने की आवश्यकता है, क्योंकि ऊर्जा सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा, श्रमिक, व्यापार, निवेश और समुद्री सुरक्षा जैसे भारत के कई मूलभूत हित इस क्षेत्र से हैं।

चीन और पाकिस्तान, ईरान और सऊदी अरब को साथ मिलाकर भारत की कूटनीतिक समस्याओं को बढ़ा सकते हैं। वहीं इजराइल के लिए परंपरागत शत्रु देशों का आपस में मिल जाना नई सामरिक चुनौती बन सकता है। यही नहीं, मध्य-पूर्व में अमेरिकी हित पूरा करने के लिए उसका सऊदी अरब और यूएई पर नियंत्रण जरूरी है। ऐसे में 'आइ2यू2' समूह के भारत, अमेरिका, यूएई और इजराइल ने सामूहिक सुरक्षा की तर्ज पर चीन को नए आर्थिक गलियारे के निर्माण से चुनौती देने की योजना पर काम शुरू कर दिया है। 2021 में पहली बार इस समूह के बीच समुद्री सुरक्षा, बुनियादी ढांचे, डिजिटल ढांचे और परिवहन से जुड़े अहम मुद्दों पर चर्चा हुई थी। भारत में यूएई के राजदूत ने उस वक्त इस नए गुट को पश्चिमी एशिया का 'क्वाड' बताया था।

यह योजना मध्य-पूर्व और एशिया में आर्थिक और राजनीतिक सहयोग के विस्तार पर केंद्रित है, जिसके अंतर्गत व्यापार, जलवायु परिवर्तन से मुकाबला, ऊर्जा सहयोग और अन्य महत्त्वपूर्ण साझा हितों पर समन्वय करना शामिल है। इस गलियारे का निर्माण पूरा होने पर भारत के लिए कंटेनर परिवहन की लागत में उल्लेखनीय कमी आएगी। अगर यह समूह और कार्ययोजना सफल होती है, तो पश्चिम एशिया में भारत की भू-राजनीतिक उपस्थिति को बढ़ावा मिलेगा और वैश्विक स्तर पर भारत के रणनीतिक और आर्थिक महत्त्व को बढ़ावा मिलेगा। भारत और यूएई के बीच आर्थिक संबंध पहले से ही गहरे हैं। यूएई भारत का तीसरा सबसे बड़ा व्यापार साझीदार है।

भारत की हिंद महासागर को लेकर वर्तमान नीति शक्ति संतुलन पर आधारित है। भारत 2007 में स्थापित 'क्वाड' का अहम सदस्य है। भारत, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया का यह सामरिक समूह स्वतंत्र, खुले और समृद्ध हिंद-प्रशांत क्षेत्र को सुरक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध है। हालांकि इन चार देशों के साझा उद्देश्य को लेकर चीन के साथ रूस इसकी आलोचना करता रहा है।

अमेरिका की नजर हिंद प्रशांत क्षेत्र के रणनीतिक और आर्थिक महत्त्व पर भी है। इस क्षेत्र में चीन ने कई देशों को चुनौती देकर विवादों को बढ़ाया है। चीन 'वन बेल्ट वन रोड' परियोजना को साकार कर दुनिया में अपना प्रभुत्व स्थापित करना

चाहता है और उसके केंद्र में हिंद प्रशांत क्षेत्र की अहम भागीदारी है। चीन ने दक्षिण एशिया के कई देशों में बंदरगाहों का निर्माण कर भारत की सामरिक चुनौतियां बढ़ा दी हैं। अभी तक चीन पर आर्थिक निर्भरता के चलते अधिकांश देश चीन को चुनौती देने में नाकामयाब रहे हैं। अब क्वाड के बाद 'आइ2यू2' फोरम के साथ आने से चीन का मुकाबला करने में अन्य देशों का साथ मिलने की संभावनाएं बढ़ेगी। गौरतलब है कि अमेरिकी विदेश नीति में एशिया प्रशांत क्षेत्र को बेहद महत्त्वपूर्ण माना गया है। चीन के उभार को रोकने के लिए कूटनीति और सामरिक रूप से अमेरिका एशिया के कई इलाकों में अपनी सैन्य क्षमता को बढ़ा रहा है। बराक ओबामा ने एशिया में अपने विश्वसनीय सहयोगी देशों के साथ उन देशों को भी जोड़ने की नीति पर काम किया, जो चीन की विस्तारवादी नीति और अवैधानिक दावों से परेशान हैं। इनमें से कुछ देश दक्षिण चीन सागर पर चीन के अवैध दावों को चुनौती देना चाहते हैं और कुछ देश चीन की भौगोलिक सीमाओं के विस्तार के लिए सैन्य दबाव और अतिक्रमण की घटनाओं से क्षुब्ध हैं। ओबामा के बाद बाइडेन प्रशासन भी सामूहिक सुरक्षा को बढ़ावा देने की नीति पर काम करके अपने सहयोगियों को जोड़ रहा है। इसमें आस्ट्रेलिया, यूके और यूएस के समूह 'आकस' तथा 'इंडो-पैसिफिक इकोनामिक फ्रेमवर्क' यानी 'आइपीईएफ' शामिल हैं। इस समूह में भारत सहित तेरह देश भागीदारी कर रहे हैं। जाहिर है, जिस प्रकार अमेरिका ने रूस को घेरने के लिए नाटो का विस्तार कर रूस के पड़ोसी देशों के साथ सुरक्षा संधि की थी, उसी तर्ज पर एशिया में चीन को घेरने की नीति अपनाई जा रही है। भारत, आस्ट्रेलिया, जापान और अमेरिका लगातार एशिया प्रशांत के समुद्र में अपनी शक्ति बढ़ा रहे हैं, वहीं भू-राजनीतिक स्तर पर भी ऐसी कार्ययोजनाओं को आगे बढ़ाया जा रहा है। चीन की साम्राज्यवादी और आक्रामक आर्थिक नीतियों के कुचक्र से दुनिया को बचाने के लिए क्षेत्रीय स्तर पर मजबूत गठजोड़ बनाया जाना चाहिए, यह भारत और वैश्विक सुरक्षा के लिए बेहद जरूरी है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:16-05-23

मध्यवर्ग के लिए इस देश में सहानुभूति का अभाव क्यों

मनु जोसेफ, (पत्रकार और उपन्यासकार)

गुरुग्राम (हरियाणा) की दारुण बदसूरती में एक बेहद खूबसूरत टाउनशिप है। कुछ निवासी इसे बिल्डर कंपनी की मूर्खता भी कहते हैं, क्योंकि इस कॉलोनी में रास्ते हरे-भरे पेड़ों से पटे हैं, पार्क सुंदर फूलों के बिस्तर हैं और जहां-तहां हरे टीले मौजूद हैं। इसके अलावा भी बिल्डर ने कई तरह की उदारता बरती है, जो भारत में आमतौर पर नहीं दिखती। यहां का जनजीवन काफी सुगम जान पड़ता है। 15 साल पहले यह जगह और भी अधिक खूबसूरत थी, इसलिए जब इस निर्माण कंपनी ने यहां से कुछ किलोमीटर दूर नई आवास परियोजना शुरू करने की घोषणा की, तो सैकड़ों लोग विला बुक करवाने दौड़ पड़े। साल 2012 के आसपास बिल्डर को घरों की डिलीवरी शुरू करनी थी, लेकिन अभी तक किसी को अपना आशियाना नहीं मिल सका है। असल में, बाद के वर्षों में एक बिल्डर की मौत हो गई, उसके दो प्रमोटर धोखाधड़ी के आरोप में जेल चले गए और इसका प्रबंधन नौकरशाहों ने अपने हाथ में ले लिया। नतीजतन, वे सैकड़ों लोग, जिन्होंने

अपनी बचत का पूरा पैसा यहां लगा रखा था या इस पर भारी कर्ज लिया था, जिसे वे अभी तक चुका रहे हैं, अब उन लाखों भारतीयों में शुमार हो गए हैं, जिन्होंने बिल्डरों पर भरोसा किया, लेकिन अब तक वे खाली हाथ हैं।

खरीदार अदालतों, राजनेताओं, नियामकों और मीडिया का ध्यान लगातार अपनी ओर खींच रहे हैं, लेकिन उनके प्रति शायद ही किसी को सहानुभूति है। सस्ती आवासीय योजना से इतर जिन्होंने भी अपना घर बुक किया है, उनको विशेष नुकसान है। एक ऐसे राष्ट्र में, जहां दुर्भाग्य का पैमाना काफी ऊंचा हो, वहां एक विला के कब्जे में देरी को कोई खास तवज्जो नहीं मिलता। फिर, विला-मालिकों के लिए 'मध्यवर्ग' शब्द के इस्तेमाल पर भी आपत्ति होगी। आय और संपत्ति के हिसाब से वे औसत भारतीय परिवार का प्रतिनिधित्व नहीं करते। कुछ कारणों से अर्थशास्त्री यही मानते हैं कि असल भारतीय मध्यवर्ग अमूमन 'मध्यवर्ग' जैसे शब्दों का इस्तेमाल करने वाले ज्यादातर लोगों की तुलना में बेहद गरीब है। मेरा खुद का यह मानना है कि मध्यवर्ग वह है, जिसे अपनी मौजूदा जीवनशैली को बनाए रखने के लिए काम करना होता है, साथ ही खर्च करने का उसका आत्मविश्वास उसकी नियमित आय पर निर्भर होता है। इस तरह से देखा जाए, तो दुनिया भर में मध्यवर्ग की कुछ समान विशेषता होती है। बस, अमीर देशों में मध्यवर्ग बहुसंख्यक है और गरीब देशों में अल्पसंख्यक, जिसके कारण यह वर्ग यहां राजनीतिक रूप से खास अहमियत नहीं रखता। इस कारण, घर खरीदने का फैसला गलत होने जाने जैसे सदमे का नतीजा घातक हो सकता है।

आदित्य मिश्र पेशे से वित्त कार्यकारी अधिकारी हैं, जिन्होंने 2009 में एक विला खरीदा था। उन्होंने विला की 1.8 करोड़ रुपये कीमत का करीब 85 प्रतिशत भुगतान कर दिया है। इसका अर्थ है कि बचत तो उनकी डूब ही चुकी है, पिछले कई महीनों से वह हर माह एक लाख रुपये से अधिक की ईएमआई भी चुका रहे हैं, लेकिन विला का सपना अब तक अधूरा है। उनके जैसे अन्य खरीदारों ने एक समूह भी बनाया है और वे नियामकों व नौकरशाहों से गुहार लगा रहे हैं। वे विला शब्द के बजाय हमारे सपनों का घर कहना पसंद करते हैं। उन्होंने बैंकों को कर्ज का पुनर्गठन करने के लिए भी कहा है, लेकिन बैंकों का स्पष्ट कहना है कि ऐसा करने से उनकी क्रेडिट रेटिंग इतनी गिर सकती है कि भविष्य में उन्हें शायद ही कर्ज मिल सकेगा। कुछ बुजुर्ग तो विला की आस में इस दुनिया से भी विदा ले चुके हैं।

आदित्य कहते हैं, यह सब बहुत खौफनाक है। खरीदारों को इस प्रोजेक्ट पर विश्वास था, क्योंकि बैंकों ने भी इसका समर्थन किया था। इसीलिए वह सवाल करते हैं कि घर मालिक ही क्यों इस सबकी कीमत चुकाए, बैकों को भी क्यों नहीं इसका साझेदार बनाना चाहिए? इसके बजाय बैंक करीब 15 वर्षों से इन लोगों से पैसा वसूल रहे हैं। फिर भी, इन लोगों का दर्द या गुस्सा देश को शायद ही झकझोर सकेगा। असल में, भारत में दुखों को मर्यादा के अधीन रहना पड़ता है। जब तक कारक जबर्दस्त नहीं होंगे, इसे दुख नहीं माना जा सकेगा।